Knowledge Consortium of Gujarat
Department of Higher Education - Government of Gujarat
Journal of Humanity
ISSN: 2279-0233

Continuous issue-23 | April – May 2016

'पाली' कहानी में मानवीय संवेदना

आज़ादी के पश्चात हिन्दी कहानी साहित्य को जिन लेखकों ने अपनी सार्थक रचनाशीलता से एक व्यापक फलक प्रदान किया है, उनमें भीष्म सलाहनी जी का महत्वपूर्ण स्थान है। भीष्म जी हिन्दी के उन कहानीकारों में से एक हैं, जिन्होंने अपनी कहानियों में मनुष्य को उसके सपनों, उसके तमाम सुख-दुःख, हार-जीत तथा उसके संघर्ष और उसकी उपलब्धियों के साथ प्रस्तुत किया है। उन्होंने इस जमीन पर दो देशों की दिवारों को न केवल खड़ी होते देखा है, अपितु उन दीवारों के क्रंदन, क्लेश, कलह, अवसाद, यंत्रणा और आर्तनाद को भी भीतर तक महसूस किया है। यही कसक बार-बार उनकी कहानियों में प्रकट होती रही है। विभाजन की त्रासदी के साथ ही टूटते मानवीय मूल्यों, कला और संस्कृति के क्षेत्र में बढ़ते राजनीतिक हस्तक्षेप और इन सबके बीच जी रहे निम्न और मध्यमवर्गीय मनुष्य की आशा-निराशा, टूटन-घुटन, संघर्ष, विड़म्बना, आकांक्षाएँ, बदलाव आदि को पूरी जीवंतता के साथ भीष्म जी ने अपनी कहानियों में उकेरा है। उनकी कहानियाँ सीधी जिन्दगी से जुडी कहानियाँ हैं। प्रेमचंद की भाँति भीष्मजी भी अपनी कहानियों में यथार्थ को अभिव्यक्त करते हैं। ये कहानियाँ प्रेमचंद की कहानियों की तरह समस्याओं का कोई समाधान प्रस्तुत नहीं करती अपितु पाठक को सोचने पर विवश करती है। उनकी अधिकांश कहानियाँ मानवीय संवेदनाओं से जुड़े अनगिनत सवाल हमारे सामने खड़े करती है। हमें बार-बार झकझोरती है, उद्वेलित करती है और बहुत बार हमें भावात्मक संबल प्रदान करती है। इसकी वजह यह है कि भीष्म जी की कहानियाँ एक भारतीय मनुष्य की चिंताओं की कहानियाँ है। उन्होंने मानवजीवन के जिस किसी अंश को कथावस्तु में उठाया है उसे गहरी संवेदनशीलता की ऊष्मा में लपेटकर सादगी और दायित्व बोध के साथ रूपायित किया है।

'पाली' संकलन की पहली कहानी है, जिसके आधार पर संकलन का नामकरण भी हुआ है। 'पाली' संकलन की सबसे सशक्त कहानी है। सशक्त इस अर्थ में कि भीष्मजी ने इस कहानी में उस इन्सानी रिश्तों को महत्व दिया है, जो धर्म-संप्रदाय, वर्ग और वर्ण की दिवारें लांधकर आदमी और आदमी के बीच एकात्म कायम करता है। संवेदना के जिस बिन्दु पर पहुँचकर किसी धर्म, जाति, संप्रदाय – सब पृष्ठभूमि में चला जाता है। उजागर होता है – निर्मल निश्चल अनुभूति का वह रिश्ता, जहाँ कोई भेद नहीं, कोई दीवार नहीं। इस कहानी में उसी जमीन की तलाश लेखक ने की है। कहानी की शुरूआत बडे ही मार्मिक शब्दों से हुई हैं। लेखक कहते हैं कि - ''जिन्दगी के छोर कभी एक दूसरे से नहीं मिलते, न जीवन में, न कथा-कहानियों में। हम केवल इस आशा में जीते रहते हैं कि एक दिन वे मिल पाएँगे और कभी-

कभी हमें ऐसा भ्रम होने लगता है कि वे सचमुच मिल गये हैं।''[1] लेखक के इन शब्दों में हमें आशावादी स्वर दिखाई देता है। इसी आशावादी स्वर की फलश्रुति कहानी के अंत में दिखाई देती है। मनोहरलाल और उसकी जिन्दगी का एक छोर तो दूर-पार के एक कस्बे में उस वक्त रह गया था जब देश का बँटवारा हुआ था और सैंकडों लोगों के साथ वे भी अपना बोरिया-बिस्तर उठाए शरणार्थियों के काफिले में चलने लगे ओथे और उनके कदमों की खाक से सारे माहौल में गुबार-सा भर गया था। जिस भांति अलग-अलग नदियाँ अपने-अपने प्रवाह में सागर की ओर बढ़ने लगती है। शरणार्थियों के काफिलें भी, किसी विभाजन-रेओखा की ओर बढ़ने लगे थे जो उन्हीं दिनों एक देश को काटकर दो देश बनाने के लिए खींची गई थी। मनोहरलाल अपनी पत्नी बेटी और चार साल का बेटा पाली को लेकर दूसरे शरणार्थियों के साथ चल देता है। बहुत-सी लोरियों की पाँत उन्हें विभाजन रेखा तक ले जाने के लिए खडी थी। लेखक के शब्दों में - ''मनोहरलाल भी सिर पर गट्टर रखे और बेटे को उँगली से लगाये और उनकी पत्नी कौशल्या भी सिर पर गट्टर रखे और अपनी दूध पीती बच्ची को गोद में लिये लोरियों की तरफ बढ़ रहे थे।''[2] मनोहरलाल को लगा जैसे उसके बेटे पाली का हाथ उसके हाथ से छू गया है। उस वक्त कौशल्या लोरी पर चढ़ चूकी थी और मनोहरलाल ने सिर पर से गट्टर उतारकर उसे पकडा दिया था। तभी उसने देखा कि पाली वहां पर नहीं है। बहुत ऊँची आवाज में चिल्ला-चिल्लाकर बेटे के पुकारने पर भी मनोहरलाल को सफलता नहीं मिलती है। यहाँ पर लेखक ने ठीक ही कहा है कि - ''कौन जानता है कि स्थितियाँ निर्णायक होती है या मनुष्य स्वयं निर्णायक होता है या भाग्य निर्णायक होता है ? घटनाएँ घटती रहती है और जीवन की विडंबनाएँ उनमें से झाँक-झाँककर हमारा मुँह चिढ़ाती रहती है।''[3] यहाँ पर फिल्म 'गदर एक प्रेमकथा' अवश्य याद आ जाती है। जिसमें भी नायिका देश-विभाजन के दंगों में अपने माता-पिता से बिछड़ जाती है। फिल्म में ट्रेन में चढ़ते वक्त नायिका का हाथ छूट जाता दिखाया है तो इस कहानी में लोरी में चढ़ते वक्त पाली गुम हो जाता दिखाई दिया है।

पाली का कहीं पर भी पता नहीं चलता है। पति-पत्नी निश्चय नहीं कर पाते हैं कि लोरी में से उतर जाए या उसमें बने रहें। पति-पत्नी दोनों बेसुध से आँखे फाड़ सड़क की ओर देखे जाते हैं। धीरे-धीरे शहर पीछे छूट जाता है। कौशल्या देर तक बिलखती रहती है। हिचकोले खाती लोरियों का काफिला आगे बढ़ने लगता है। मनोहरलाल अपनी पत्नी को ढाढस बंधाकर कहता है कि - ''मिल जाएगा, मिल जाएगा। यहीं कहीं पर होगा। वह कहीं लोप तो नहीं हो सकता था ? किसी मेहरबान ने जरूर उसे किसी दूसरी लोरी में बिठा दिया होगा।''[4] मनोहरलाल की अभी भी आश बनी रहती है कि पाली मिला जाएगा। लेकिन पाली का कहीं पता नहीं चलता। मनोहरलाल अपनी पत्नी तथा छोटी-सी बच्ची को लेकर हिन्दुस्तान चला जाता है। काफिले से पाली का बिछड़ जाना एक ऐसा हादसा था, जिसे न तो मनोहरलाल भूल पाता है और न ही उनकी पत्नी। वर्ष पर वर्ष गुजर जाते हैं, पर लाख कोशिशों के बावजूद पाली का पता नहीं लगता। मनोहरलाल की पत्नी विक्षिप्त-सी होकर अपने खोये बेटे के लिए छटपटाती रहती है। उधर पाकिस्तान में शकूर और जैनब निःसंतान दंपति के यहाँ पाली को शरण मिलती है। लेखक ने बहुत ही मार्मिक ढंग से उसका चित्रण किया है -

''जैनब की दोनों बाँहें उसे आलिंगन में बाँधे हुई थी। जैनब को जिन्दगी में पहली बार एक ऐसे सुख का अनुभव हो रहा था जो केवल उसी स्त्री को हो सकता है, जिसकी गोद सुनी रह गयी हो। महकता हुआ छोटा-सा शरीर, उसके साथ यों सटा हुआ था मानों उसी की गोद के लिए बना हो। पहली बार जैनब को लगा जैसे किसी भी क्षण उसके स्तनों में से दूध फूट निकलेगा। उसके सारे शरीर में व्याकुल-सा मातृत्व हिलोरे लेने लगा था।''[5] भीष्म जी की भाषा-संयोजना कितनी सरल और सर्वोत्कृष्ट है। इस प्रसंग से हमें ज्ञात होता है। जैनब बड़े ही चाव से पाली का पालन-पोषण करती है। पाली धर्मान्तरित होकर इल्ताफ हो जाता है और बड़ी मुश्किल से नये माँ-बाप से हिल-मिल जाता है। एक मजहबी मुसलमान के रूप में पाली की परवरिश होती है। वह अपनी पिछली जिन्दगी भूल-सा जाता है। सालभर के अंदर नन्हा पाली, शकुर अहमद बर्तनफरोश का बेटा इल्ताफ हुसैन नाम से जाना जाने लगता है। उसे मस्जिदवाले स्कूल में भी भेजा जाता है और अन्य बच्चों के साथ वह मस्जिद के चबूतरे पर बैठकर पीठ हिला-हिलाकर कुरान शरीफ की आयतें कंठस्थ करने लगता है। जैनब और शकुर के जीवन को मानों एक केन्द्रबिन्दु, एक सहारा मिल जाता है। एक धूरी जिस पर जिन्दगी बड़ी मस्ती से चलने लगती है। पति-पत्नी के भविष्य के सपने अब नन्हें इल्ताफ के इर्द-गिर्द बुने जाने लगते हैं। लेखक के शब्दों में देखें - ''फेरी लगा-लगाकर बर्तन बेचनेवाला शकूर उस दिन के ख्वाब देखने लगा जब वह चीनी के बर्तनों की दूकान खोलेगा और दोनों बाप-बेटा उसमें बैठा करेगें, किसी की मोहताजी नहीं होगी, अपनी नींद सोएगें, अपनी नींद जागेगे और जैनब उसे दिन के ख्वाब देखने लगी जब इल्ताफ की बहू छमछम करती इस आँगन में प्रवेश करेगी, आँगन में उजाला ही उजाला छिटक जाएगा।''[6] इल्ताफ के आने से मानो शकूर और जैनब की जिन्दगी ही बदल जाती है। दो साल इसी मस्ती में बीत जाते हैं और एक दिन जो जैनब ने सोचा ही न था, वह थाने में शकूर अहमद के नाम समन आ ही जाता है।

उधर मनोहरलाल और कौशल्या की स्थिति देखें तो... ''कुछ सदमें ऐसे होते हैं जो दिल पर केवल जख्म करते हैं और वक्त बीतने पर जख्म भर जाते हैं पर कुछ सदमें ऐसे भी होते हैं जो धुन बनकर अंदर से कलेजा चाटने लगते हैं और इन्सान के बसमें कुछ नहीं रह जाता।''[7] कौशल्या की यही स्थिति होती है। जब वह पति के साथ भारत पहुँची तो सुनी गोद लेकर। उस रोज लोरियों का ताता सही सलामत सीमा तक नहीं पहुँच पाया था। अँधेरा होने पर बीच रास्ते में ही कुछ हमलावर बर्छे-बाले लेकर टूट पड़ते हैं। चारों और खून के छींटे उड़ने लगते हैं। इस हादसे में कौशल्या अपनी बच्ची को भी खो देती है। दिल्ली पहुँचने पर मनोहरलाल आसरा खोजने लगता है। वह जैसे-तैसे अपने मन को मारकर बीती बातें भूलना चाहते हैं। बाजार में एक दूकान खोलकर दो जून की रोटी का जुगाड करने लगता है। लेकिन कौशल्या की हालत देखकर वह बहुत दुःखी हो जाता है। वह कभी गुम-सुम बैठी रहती तो कभी चीखने चिल्लाने लगती। कौशल्या की यह हालत देखकर मनोहरलाल का दिल दहल जाता है। अब वह दफ्तरों, कचहरियों, बड़े-बड़े लोगों के घरों के दरवाजे खटखटाने लगता है। इन दफ्तरों में काम करनेवाले लोग सरकारी कर्मचारी, समाजसेवक, स्त्रियाँ-पुरूष अक्सर इस काम से पाकिस्तान आया-जाया करते थे। मनोहरलाल की भी दौड़-धूप शुरू हो जाती है।

लाखों लोगों भरे शहर में भटके हुए बच्चे को खोज निकालना कौन-सा आसान काम है ? जब दौड़-धूप शुरू हुई तो पाली के मिलने की आशा बँधने लगती है। आखिर पूरे दो साल बाद सुराग मिल जाता है। पता चलता है कि शकुर नाम के बर्तनफरोश के घर बच्चा रह रहा है। भारत सरकार की ओर से कुछ अधिकारी पाकिस्तान रवाना होते हैं तो मनोहरलाल फिर से उम्मीदों का सहारा लेकर उन अधिकारियों के साथ चल पड़ता है।

जिस रोज पुलिस का हवालदार पहली बार समन लेकर शकुर के घर पर जाता है तो जैनब जल में से फैली हुई मछली की तरह छटपटाने लगती है। कई हमदर्द इकट्ठे हो जाते हैं। शकुर कभी भाई के यहाँ चला जाता है तो कभी किसी ओर समधी के घर। एक अजीब-सी आँख-मिचौली शुरू हो जाती है। ऐसे में पूरे तीन साल निकल जाते हैं। मनोहरलाल की स्थिति का वर्णन करते हुए लेखक कहते हैं - ''जिन्दगी मनोहरलाल को यों झिझोड रही थी, जैसे बाज पक्षी को मुँह में दबोचकर झिझोडता है।''[8] अंततः भारत का खोजी दल पाकिस्तान जाकर पाली को ढूंढ निकालता है। पूरे पाँच साल बाद मनोहरलाल और खोजी दल शकुर के घर पहुँच ही जाते हैं। यहाँ पर एक बात कहना चाहूँगी कि यह तो कई सालों के पहले की घटना को लेखक ने प्रस्तुत किया है। जो आज के समय में भी उतनी ही प्रस्तुत लगती है। किन्तु आज परिस्थिति बदल गई है। आज पाली जैसे भोले-भाले बच्चें भीड़ में से नहीं स्कूल या घर के ही आँगन में से खो जाते है। उस वक्त का खोजी दल पाँच साल के बाद भी बच्चे को ढूँढ निकालता है लेकिन क्या आज का खोजी दल इतना सक्रिय है ? प्रश्न खड़ा होता है। आज तो खोया हुआ चा जीवित मिलना बहुत मुश्किल है। कोई बच्चों के बिलखते हुए माँ-बाप टी.वी. न्युझ में दिखाई देते है। उनकी भावनाओं को कौन समझेगा ? इस कहानी में तो पाली मिल जाता है। लेकिन अपनी पिछली जिन्दगी को नहीं याद कर पाता। आज के समय में बच्चा जीवित मिल जाए यही बहुत बड़ी बात होती है। फिर चाहे वह भले ही अपनी पीछली जिन्दगी को याद करें या न करें। मनोहरलाल पाली की इस बात से निराश हो जाते हैं। मौलवी एवं पाकिस्तानी अधिकारी भी इस बात पर बार-बार जोर देते हैं कि बच्चे ने अपने पिता को पहचाना नहीं। अतएव मनोहरलाल का बच्चे पर कोई अधिकार नहीं है। मनोहरलाल सबूत के तौर पर एक तस्वीर लेते आया था। उसे मेजिस्ट्रेट के हाथ में देते हुए मनोहरलाल कहता है - ''इस तस्वीर में जो बच्चा है जनाब, वही बच्चा है। आप खुद देख लीजिए।''[9] इस पर अपनी नाराजगी व्यक्त करता हुआ शकुर अहमद उत्तेजित होकर कहता है - ''तस्वीर से क्या होगा जनाब ! तस्वीर तो हमारे पास भी है।''[10] और शकुर फ्रेमशुदा एक तस्वीर आस्तीन से साफ करते हुए उठा लाते हैं और मेजिस्ट्रेट के सामने रख देते हैं। मेजिस्ट्रेट बारी-बारी दोनों तस्वीरें पाली को दिखाते हैं और उसकी प्रतिक्रिया को जाँचते हैं। पाली दोनों तस्वीरों में से पहचान लेता है। मनोहरलाल फफक फफक कर रोने लगता है, शकुर के दिल में उल्लास की लहर दौड़ जाती है तो परदे के पीछे बैठी जैनब की आँकें भर आती है। मौलवी के तेवर अब भी चढ़े हुए हैं। वे किसी की तरह बच्चे को सौंपने के लिए तैयार नहीं है। किन्तु भारत से आयी समाजसेविका बच्चे को मनोहरलाल को सौंपने का आग्रह कर रही है। मामला उलझकर थोड़ा गंभीर हो जाता है। तब मनोहरलाल को और तो कुछ नहीं सुझा पर चुपचाप चलता हुआ टाट के पर्दे के पास जाकर हाथ जोडकर जैनब से

कहता है - ''बहन, मैं तुम से बच्चे की नहीं, अपनी घरवाली की जान की भीख माँगने आया हूँ। वह अपने दोनों बच्चे खो चूकी है। पाली के बिना वह पागल हुई जा रही है। वह दिन-रात तड़पती रहती है। उस पर तरस खाओ।''[1] मनोहरलाल की बेबसी और छटपटाहट जैनब के दिल को हिला देती है। न चाहते हुए भी वह दिल पर पत्थर रखकर कहती है - ''ले जाओ, अपने बच्चे को। हम नहीं चाहते किसी बदनसीब की बद हुआ हमें लगे। हमें क्या मालूम तुम्हारे दोनों बच्चे खो चुके हैं।'' मनोहरलाल को मानो नया जीवन मिल जाता है। उसको जैनब को पाँव चूने को मन करता है। हाथ जोड़े वह कहता है कि - ''तुम्हारी दौलत है बहन ! तुमने इसे पालकर बड़ा किया है। मैं वायदा करता हूँ। मैं जन्म-जन्म तक तुम्हारा एहसान नहीं भूलुंगा।'' भारी मन से बच्चे की विदाई होती है।

मनोहरलाल को बच्चा मिल जाता है। उसे हिन्दुस्तान लाया जाता है और धर्मान्तरित करके पुनः हिन्दु बनाया जाता है। किन्तु वह अपने मुसलमान माँ-बाप को भूल नहीं सकता। समय होते ही उसके हाथ नमाज के लिए उठ जाते है। पंडित बगैरह कई लोगों को यह पसंद नहीं आता। मुहल्ले का चौधरी तो जबरदस्ती उसका मुंडन करवा देता है। छोटा बच्चा जितनी देर मुंडन होता है, सिसकिया भरता रहता है। अब्बा-अम्मी को याद करता रहता है। यहाँ प्रश्न यह होता है कि क्या मुंडन करवाने से, चोटी रखने से कोई हिन्दु हो जाता है ? मनोहरलाल लड्डू बाँट रहा है, लेकिन उस बच्चे के मन की क्या स्थिति है वह तो खुद पाली ही जान सकता है।

उधर उसी समय सैंकडों मिल दूर अपने सूने आँगन में बैठे जैनब और शकूर तरह-तरह के क्यास लगा रहे हैं। जैनब कह रही है - ''गया तो घर की सारी रोनक ले गया। इस वक्त मैं उसे गली-मुहल्ले ढूँढने निकला करती थी। कभी कहीं जा पहुँचता था। कभी कहीं। क्योंजी ईद पर आयेगा ना ? उसे वे लोग भेजेगें ना ? क्या हम लोग उसे मिलने नहीं जा सकते ? तुम कहते थे ना कि तुम्हारा कोई नाती बरेली में रहता है । हम उसके पास जा रहेंगे और बेटे से मिल आएँगे। क्यों जी... ? और बार-बार अपनी आँखें पोछ रही थी।''[13] यह है माँ का हृदय। भोली जैनब को अब भी आश बनी रहती है कि एक बार तो इल्ताफ से अवश्य मुलाकात होगी। शकूर मौन रहकर इल्ताफ से कभी भी मुलाकात न होने का मानो संकेत दे रहा है। भोली जैनब अपने मन को समझा नहीं पाती। एक पराया बच्चा भी किसी भी औरत के लिए कितना महत्व रखता है फिर चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान। जैनब के इन वाक्यों से पता चलता है। इस प्रकार लेखक ने मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। बड़ी विश्वसनीयता के साथ भीष्मजी ने बच्चे को केन्द्र में रखकर इन्सानियत की निश्चल-निर्मल छबि को उजागर किया है। दो संप्रदाय के लोगों की संवेदनाओं को उजागर करना भीष्मजी की लेखनी का ही कमाल है। सचमुच, मनुष्य की संवेदनाओं को, इन्सानियत को व्यक्त करती हुई उत्तम कहानी है।

संदर्भ संकेत

1. पाली, भीष्म साहनी, पृ.9
2. वही, पृ.10
3. वही, पृ.11

4. वही, पृ.12
5. वही, पृ.14
6. वही, पृ.19
7. वही, पृ.20
8. वही, पृ.24
9. वही, पृ.27
10. वही।
11. वही, पृ.28
12. वही, पृ.29
13. वही, पृ.34

संदर्भग्रंथसूची

1. कथाकार भीष्म साहनी, डॉ. कृष्ण पटेल, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर।
2. पाली, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना।
3. कहानीकार भीष्म साहनी

****

डॉ. भानु एम. चौधरी
आसिस्टेन्ट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
भाषा-साहित्य भवन,
गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद-9

Copyright © 2012- 2016 KCG. All Rights Reserved. | Powered By : Knowledge Consortium of Gujarat